Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education

Vol. VI, Issue XII, October-2013, ISSN 2230-7540

REVIEW ARTICLE

भारत की सामाजिक समस्या एवं गाँधीवादी समाधान

www.ignited.in

Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. VI, Issue XII, October-2013, ISSN 2230-7540

भारत की सामाजिक समस्या एवं गाँधीवादी समाधान

Sonia Sagwan

Research Scholar, Singhania University, Rajasthan

----------♦----------

INTRODUCTION

मानव स्वभाव का प्रयत्न न केवल व्यक्तिगत समस्या से है वरन् स्थानीय, राष्ट्रीय, और अर्न्तराष्ट्रीय समस्या से भी है। इसलिए समाज – दर्षन का ही प्राणतत्व नही है। यह जीवन – दर्षन का भी आधार तत्व है। मनुष्य स्वभाव से सामाजिक प्राणी है। इसलिए उसकी प्रत्येक समस्या को सुलझाने की स्वतंत्रता उसे मिलनी चाहिए।

समाज में रहकर ही मनुष्य अपनी समस्या का निराकरण अपने मानवीय सम्बन्धों को पूरा करने तथा समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने तथा भेद – भाव को मिटाने में वह अपने कर्तव्यों का पालन समाज में रहकर ही कर सकता है।

भारतीय परम्परा में दर्षन का एक विषेष प्रयोजन रहा है, वह है, जीव और बह्म का साक्षात्कार, जिसे मोक्ष भी कहा जाता है। आदर्ष मानव की कल्पना चाहे कितनी भी हो लेकिन यथार्थ मानव के वास्तविक स्वरूप का अध्ययन परमावष्यक है।

हार्टज एवं लैस्ले का मानना है कि ''सामाजिक समस्या एक ऐसी स्थिति है, जिससे समाज का बड़ा भाग अवांछनिय ढंग से प्रभावित होता है। इस समस्या का समाधान सामूहिक सामाजिक क्रिया द्वारा होता है।''

सामाजिक समस्या से समाज का अधिकांष भाग प्रभावित होता है। जिस स्थिति का प्रभाव समाज के एक बड़े भाग के लिए अवांछनीय या प्रतिकूल पड़ता है। वह स्थिति ''सामाजिक समस्या कहलाती है। पहले ब्रह्मविवाह के मौके पर पिता अपनी कन्या की शादी में रत्नाभूषण साजो सामान दास–दासी खुषी से देता था। लेकिन बाद में इसी प्रजा ने दहेज जैसी गम्भीर समस्या का रूप धारण कर लिया।

कहा जाता है कि ''एक अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता।

ठीक इसी तरह एक अकेला व्यक्ति किसी भी सामाजिक समस्या से नहीं निपट सकता, बल्कि किसी भी सामाजिक समस्या का हल सामूहिक रूप से निकाला जा सकता है। समाज के सबसे उच्च पद पर व्यक्ति क्यों ना हो। लेकिन वह अकेला किसी भी समस्या का सामना नहीं कर सकता।

प्रधानमंत्री लाल किले या अन्य ऐतिहासिक इमारत की सामाजिक समस्याओं को हल करने की केवल अपील लोगों से कर सकता है लेकिन इन समस्याओं को निपटाना सभी देषवासियों के हाथों में है।

हमारी सरकारी निर्धनता जनसंख्या नियंत्रण, जातिवाद, साम्प्रदायिकता, निरक्षरता और आतंकवाद जैसी सामाजिक समस्याओं के हल के लिए योजनाएं बनाती है। लेकिन स्वैच्छिक संगठनों और समाज के लोगों की भागीदारी के बिना इन समस्याओं पर कभी काबू नहीं पाया जा सकता, इसलिए महात्मा गाँधी का मानना है कि सामाजिक समस्या, राजनीतिक समस्या नैतिक समस्या व आर्थिक समस्या आदि को हर व्यक्ति अपना व्यक्तिगत अधिकार समझकर इन समस्याओं को मिल जुल कर सुलझाने का प्रयास करना चाहिए।

रेनहार्ट का मानना है कि :– ''सामाजिक समस्या समाज की वह स्थिति है जिससे समाज का एक बड़ा भाग उस स्थिति से हानिकारक परिणामों से प्रभावित है। ऐसी स्थिति का समाधान सामूहिक तौर पर किया जाता है।''

वेलेस वीवर ने लिखा है कि :– ''सामाजिक समस्या से समाज के लोगों में चिन्ता, तनपव, संघर्ष और निराषा की उत्पति होती है। इससे सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ती में बाधा पड़ती है।''

हर्बर्ट मूलर का मानना है कि :– ''सामाजिक समस्याएं कार्य और व्यवहार के वे प्रतिमान है जिन्हें समाज के अधिकांष लोग समाज के लिए घातक मानते है। ये सामाजिक मानदण्डों का उल्लंघन है। इनको सुधारना जरूरी है।''

समाचार पत्र–पत्रिकाऐं, दूरदर्षन, आकाषवाणी तथा सिनेमा आदि जनसंचार माध्यम सामयिक समस्याओं को हल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सामाजिक समस्याऐं इतिहास के साथ बदलती रहती हैं। पहले निर्धनता हमारे देष की एक बड़ी सामाजिक समस्या थी। लेकिन अब आतंकवाद की समस्या हमारे समाज के लिए बड़ी चुनौती है।

जब समाज में अपराधी प्रवृतियाँ चरम सीमा पर होती हैं तथा तनाव, असंतोष, संघर्ष, सामाजिक आदर्ष और अपेक्षिक व्यवहारों का उल्लंघन होता है तो ऐसी स्थिति सामाजिक समस्या होती है।

सामाजिक पृष्ठभूमि से उत्पन्न होकर सामाजिक समस्याऐं समाज के संगठन और व्यवस्था पर गलत असर डालती है। गाँधी दर्षन के अनुसा समाज की जटीलता बढ़ने के साथ–साथ सामाजिक समस्याऐं भी बढ़ती है।

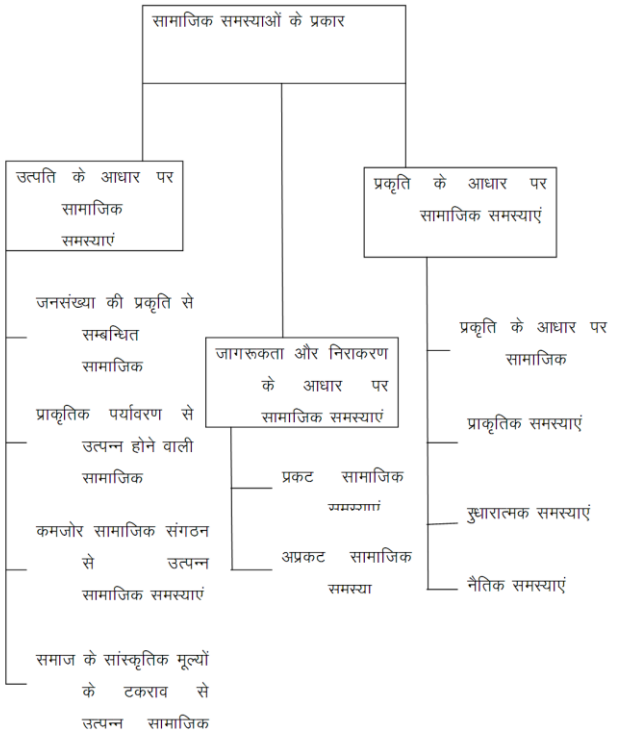

1 **उत्पत्ति के आधार पर सामाजिक समस्याऐं** :– प्राकृतिक पर्यावरण सामाजिक जीवन की दषाओं को प्रभावित करता है। भूकम्प, अकाल तथा अतिवृष्टि से समाज के उत्पादकों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। वर्तमान में बेरोजगारी और निर्धनता जैसी समस्याओं का एक कारण प्राकृतिक आपदाऐं है। नगरीकरण और गन्दी बस्ती जनसंख्या वृद्धि जैसी समस्या से ही प्रभावित होते है। गाँधीजी के अनुसार जब सामाजिक नियंत्रण करने वाले अभिकरण कमजोर हो जाते हैं तो आर्थिक प्रकृति के अपराध, कालाबाजारी और भ्रष्टाचार आदि में वृद्धि होती है। विधवा–पुनर्विवाह, सतीप्रथा तथा बाल–विवाह आदि ऐसी सामाजिक समस्याऐं हैं जिनकी उत्पत्ति तत्कालीन सामाजिक मानदण्डों के अनुसार नहीं हुई। अतः वर्तमान सामाजिक समस्या को मिटाने के लिए सांस्कृतिक मूल्यों के टकराव का संघर्ष करना जरूरी है।

2 **प्रकृति के आधार पर सामाजिक समस्याऐं** :– प्राकृतिक समस्याओं का सम्बन्ध प्रकृति के प्रकोप से होता है। इसके अन्तर्गत अतिवृष्टि, भूकम्प तथा अकाल इत्यादि समस्याऐं उत्पन्न होती है।

सुधारात्मक समस्याओं के अन्तर्गत वेष्यावृत्ति, दहेज तथा मद्यपान आदि समस्याओं में सुधार करना जरूरी है।

भ्रष्टाचार, जुआ, सट्टा, शराब, व्यभिचार तथा विवाह सम्बन्ध–विच्छेद आदि समस्याओं को समाज में नैतिकता के आधार पर अवांछनीय समझा जाता। अतः इनके सुधार हेतु प्रयास जरूरी है।

गाँधीजी समाज में सभी व्यक्तियों को इन समस्याओं से परे रहने की प्रेरणा देते थे। तथा इन समस्याओं को दूर करने का प्रयास हर सम्भव व्यक्ति को करना जरूरी है।

3 **जागरूकता और निराकरण के आधार पर सामाजिक समस्या** के अन्तर्गत निरक्षरता, निर्धनता और जनसंख्या विस्फोट इस समस्या को प्रकट सामाजिक समस्या मानते हुए इसके प्रति समाज के लोगों को जागरूक होना जरूरी है तथा अप्रकट सामाजिक समस्याऐं, समस्या उत्पत्ति का प्रारंभिक रूप होती है। इस प्रकार की समस्या ही धीरे–धीरे प्रकट सामाजिक समस्या का रूप ले लेती है। जैसे बाल–विवाह, एड्स, अस्पृष्यता तथा कालाबाजारी आदि से भी सामाजिक समस्या है। अतः इनमें सुधार करना अत्यन्त आवष्यक है।

सामाजिक समस्या निम्न कारणों से पैदा होती है :–

1 समाज में रचनात्मक ह्रास होने से

2 समाज में विकृत प्रकार की स्थितियाँ पैदा होने से

3 समाज के आदर्षों का उल्लघंन होने से

4 लोगों में तनाव के कारण

5 संघर्ष की स्थिति से

6 समाज में अव्यवस्था फैल जाने से

7 समाज के लोगों में समायोजन और सामान्य सहमति का अभाव होने से।

अतः गाँधीजी के अनुसार जिस समाज में सामाजिक परिवर्तन की गतिविधि धीमी होती है। उस समाज में सामाजिक समस्याएं भी कम होती है।

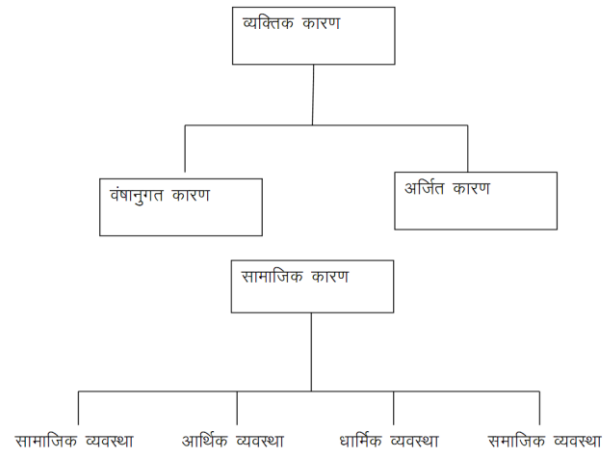

गाँधीजी के अनुसार जब किसी सामाजिक व्यवस्था में कई प्रकार के विभेद हो जाते है तो उस व्यवस्था में असंतुलन पैदा होता है। व्यक्तियों, समुदायों, संस्थाओं और अव्यवस्थाओं में भेद होने के कारण समाज के लोगों के आपसी हितों में टकराहट पैदा होती है। इससे सामाजिक समस्या जन्म लेती है। लोगों में स्वार्थ – संघर्ष के कारण सामुदायिक झगड़े क्षेत्रवाद तथा आतंकवादपूर्ण गतिविधियों जैसी समस्याऐं पैदा होती है।

वर्तमान युग में विज्ञान और तकनीकी आविष्कारों के कारण समाज में तीव्र परिवर्तन आता है। इस प्रकार समाज का तेजी के साथ विकास होता है। इन व्यवस्थाओं के गलत सामंजस्य के कारण ही सामाजिक समस्याऐं पैदा होती है। कम्प्यूटर क्षेत्र में प्रगति होने से बेरोजगारी की समस्या व औद्योगिकरण में वृद्धि हो जाने से अपराधों में वृद्धि तथा वर्ग – संघर्ष पैदा हुआ है। जो प्रतिमान समाज के उचित व्यवहारों को बतलाते। वे खण्ड – खण्ड हो जाते है। उस समय समाज में

www.ignited.in

सद्भावना, सहयोग, एकता और अनुषासन का अभाव अनुभव होने लगता है।

फुल्लर के अनुसार : – ''जब मनुष्य के व्यक्तिगत स्वाथ के मूल्य समाज की नैतिक व्यवस्था के मूल्यों से टकराते हैं तो सामाजिक समस्या उत्पन्न होती है।''

समाज में पूंजीपति लोग व्यक्तिगत स्वार्थ के मूल्य के कारण अधिक से अधिक लाभ कमाना चाहते हैं। इस कारण निर्धनता, शोषण और व्यक्तिगत समस्याऐं पैदा होती है।

गाँधीजी का मानना है कि व्यक्तिगत समस्या व्यक्ति के व्यक्तिगत हित और प्रयास से सम्बन्धित होती है। जबकि सामाजिक समस्या का सम्बन्ध सारे समाज के हित और सामूहिक प्रयास से होता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देष के लिए नई दिशाओं में सामंजस्य स्थापित करने, सर्वांगीण विकास करने और देष की आर्थिक समस्या सुधारने की समस्या थी।

वर्तमान में हमारे देष में निम्न प्रकार की समस्याऐं हमारे सामने है :–

1 सभी प्रकार के अपराध

2 बाल–अपराध

3 निर्धनता

4 बेरोजगारी

5 छात्र–असंतोष

6 भाषावाद

7 जातिवाद

8 बाल–श्रम की समस्या

9 वेष्यावृति

10 बालिकाओं की समस्या

11 नारी जीवन की समस्याऐं अथवा महिला समस्या

12 साम्प्रदायिकता

13 आतंकवाद

14 क्षेत्रवाद

15 अलगाववाद

16 गली के बच्चों की समस्याऐं

17 सांस्कृतिक प्रदूषण

18 मादक पदार्थों का व्यसन/तस्करी

19 कालाबाजारी/भ्रष्टाचार

20 षिक्षा और स्वास्थय की समस्या/एड्स की समस्या आदि।

जिस प्रकार एक चिकित्सक, चिकित्सा विज्ञान पद्वति के आधार पर रोगी का उपचार करता है उसी प्रकार सामाजिक समस्याओं का समाधान भी किया जाता है।

राम आहुजा के अनुसार :– सामाजिक समस्या निवारण के तीन उपाय हैः–

1 बहुकारवादी उपागम

2 पारस्परिक सम्बद्धता

3 सापेक्षता

प्रथम उपाय में सामाजिक समस्या का निदान करने के लिए किसी कारक के संदर्भ में अध्ययन नहीं किया जाता बल्कि विभिनन कारकों के संदर्भ में समस्या को समझकर उसका अध्ययन किया जाता है।

सामाजिक समस्या स्वतंत्र रूप में पैदा न होकर उसका सम्बन्ध अन्य किसी सामाजिक समस्या से होता है। प्रत्येक समस्या समय और स्थान से सम्बन्धित होती है। यह जरूरी नहीं कि एक समाज की समस्या दूसरे समाज के लिए भी समस्या ही हो। समाज में कुछ व्यक्तिगत समस्या अपने प्रभाव क्षेत्र को बढ़ा लेने के कारण भी सामाजिक समस्या उत्पन्न कर देती है।

गाँधी जी का मानना है कि किसी भी सामाजिक समस्या का समाधान समाज के व्यक्तियों द्वारा मिलजूल कर ही किया जा सकता है। यदि समाज के सभी वर्गों के लोग आपस में मिल जाए तो सभी प्रकार की समस्याओं पर आसानी से काबू पा सकते हैं।

अतः सामाजिक समस्याऐं समाज के आगे चुनौतियां है, ये समय की कसौटियाँ और जिन्दगी की परीक्षाऐं हैं। इन परीक्षाओं को पास करने के लिए समुदाय के लोगों में पर्याप्त बुद्विमता, धैर्य एवं साहस का होना जरूरी है। तभी हमारे देष में सभी प्रकार की समस्याओं का समाज व व्यक्ति से परे किया जा सकता है। किसी भी सामाजिक समस्या को हल करने के लिए व्यक्तियों का समुदाय मे होना जरूरी है।

'अर्थ' प्रेरित समाज – व्यवस्था – सोद्देश्य धर्म एवं अर्थ–अर्जन एवं सृजन को ध्यान में रखकर भारत को ऐसी सामाजिक व्यवस्था कि रचना करनी है जिसमें–

(प) न कोई ऊंचा हो और न नीचा,

(पप) न कोई बड़ा हो और न छोटा,

(पपप) न कोई सुजाति हो और न कुजाति,

(पअ) न कोई अमीर हो और न गरीब, वरन्–

(अ) सब एक समान हो,

(अप) सभी भारतीय हो,

(अपप) सबकी आस्था 'मनुष्य एवं भारत देश की सर्वगुण सम्पन्नता' में हो,

(अपपप) सब एक–दूसरे के सहायक हों, पूरक हों, और

(पग) मानव–आवश्यकतानुरूप सबको सर्वोदय हेतु समान अवसर उपलब्ध हो।

ऐसी सामाजिक व्यवस्था का सपना देखा था महात्मा गांधी ने। परन्तु इन 48 वर्षों में हमने केवल सपना ही देखा है। इसे साकार करने का प्रयत्न नहीं किया है। सरकारें केवल अपने पांच वर्ष चलने एवं अगले पांच–पांच वर्षों के प्रबंध में लगी रहीं। उन्हें यह देखने की फुर्सत ही नहीं रही कि उनकी 'वोट–कैचिंग राजनीति' के कारण हमारी सामाजिक व्यवस्था चरमरा कर टूटने के कगार पर पहुंच गई है, और हम 'एक दूसरे के सहायक एवं पूरक' होने के स्थान पर एक–दूसरे के 'प्रतिस्पर्द्धी एवं विरोधी' होते जा रहे हैं। वे हमारी स्वतंत्रता–पूर्व की समानता को सामाजिक, आर्थिक, एवं शैक्षणिक समानता के नाम पर असमानता का घुन लगाते जा रहे हैं। धर्म से धर्म को लड़ाने की प्रक्रिया में अपने 'वोट बैंक' की मजबूती देखकर, इन्होंने, इसे और भी बढ़ावा दिया । जाति के आधार पर हमें 'बांट' कर 'वोट' तो लिया पर हमारे टुकड़े–टुकड़े कर दिये। न तो हमारी आस्था 'मनुष्य' में रह गई और न ही 'भारत देश' में। हम तो आत्मकेन्द्रित हो गये और केवल अपनी–अपनी सोचते हैं। हमारा 'आज' भी सुरक्षित नहीं है 'कल' क्या सुरक्षित होगा ? यह प्रश्न हमारे दिल–व–दिमाग पर हर समय छाया रहता है। ऐसी स्थिति में हम जो थे, वह भी नहीं रह गये, उन्नति करने एवं बढ़ चढ़कर देश–काल को बनाने में भाग लेने की बात को कौन कहे ?

फिर हमें क्या करना चाहिए ? नये सिरे से समाज की पुनर्व्यवस्था ही इसका एक मात्र विकल्प है। हमें अपनी नीतियों का इस प्रकार प्रतिपादन एवं पोषण करना है जिससे कि–

(1) गांव–समुदाय और कस्बा एवं शहर इकाई एकता, समानता, मानवता, आत्म–निर्भरता एवं प्रशासनिक दक्षता का एक उदाहरण प्रस्तु करें।

(2) राज–व्यवस्था, शिक्षा–व्यवस्था, न्याय–व्यवस्था एवं अर्थ–व्यवस्था इस तरह से एक–दूसरे से जुडी एवं घुली–मिली हों जिससे कहीं भी असमानता एवं अन्याय का दोष न घर कर सकें।

(3) जाति एवं धर्म के नाम पर बन्दर–बांट के स्थान पर सबको एक स्तर का समझना एवं सबको भारतीय बनाने की ओर सक्रिय कदम उठाना।

(4) राजनीतिक दांव–पेंच से जाति एवं धर्म को दूर रखना जिससे आपसी सौहार्द बढ़े और सभी एक–दूसरे के सहयोगी, सहायक एवं पूरक हो।

इन सभी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राजनीतिक कुशलता, प्रशासकीय शक्ति एवं मानवता में भक्ति की जरूरत है। हम कर सकते हैं। हम सक्षम हैं। हमारे अन्दर कमी है मात्र इच्छाशक्ति की। मानव इच्छा शक्ति के राजनीतिक इच्छा–शक्ति को बल मिलता है। तब राजनीतिक कुशलता बढ़ती है। प्रशासकीय शक्ति स्वयं आ जाती है अपने आप ही, तब, मानवता में भक्ति बढ़ती है। इन सबके परिणामस्वरूप 'बन्दर–बांट', 'वोट–कैचिंग', एवं 'वोट–बैंक' की प्रवृति को समूल नष्ट किया जा सकता है जब यह नष्ट जो जायेगा तब निःसंदेह हम उस समाज की संरचना कर सकेंगे जिस समाज का सपना गांधी जी ने ही नहीं वरन् हम सबने स्वतंत्रता–पूर्व देखा था और आज भी देख रहे हैं । **समानता पर आधारित सामाजिक व्यवस्था हेतु** हमें निम्नांकित कार्य करने होंगे जिन्हें आज की स्थिति में अब केवल सरकार कर सकती है । सरकार को शुरू भी करना होगा और अन्त भी । कालान्तर में इसे थाती बनाकर रखना हमारा कर्तव्य होगा और जिम्मेदारी भी, जिसे हम पूरा कर सकेंगे, इसकी हमें पूरी आशा है, वे कार्य हैं–

1. धर्म की 'आड़' की समाप्ति – हमने विशेष रूप से हमारे राजनीतिज्ञों ने अंग्रेजों की ही भांति भारत के विभिन्न धर्मों को राजनीति के उद्देश्य से प्रेरित होकर 'बहुसंख्यक' (डंरवतपजल) एवं 'अल्पसंख्यक' '(डपदवतपजल) का नाम देकर मुख्यतः हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई के नाम पर बांट रखा है। इससे हमारा सबसे बड़ा नुकसान यह हुआ है कि हम स्वतंत्रता–पूर्व के भारत को अपना भारत नहीं मानते । हम या तो हिन्दू हैं, या मुसलमान, सिख हैं या ईसाई । भारतीय तो कहीं से भी नहीं।

हमें इस 'आड़' को हटाना होगा और बीच की स्व–निर्मित, सरकार पोषित दीवार को तोड़ना होगा। 'शिक्षा' के स्तर पर जो बहुसंख्यक एवं अल्पसंख्यक का ताना–बाना है, उसे समूल समाप्त करना होगा। विभिनन प्रार्थना–पत्रों में 'धर्म का प्रश्न' या जनगणना में जिस 'धर्म' का आंकड़ा तैयार किया जाता है, उसे समाप्त करना होगा।

इससे भावनात्मक एकता आयेगी और हम बंटने से बच जायेंगे। अभी भारतीयता जीवित है । कहीं यह समाप्त न हो जाय, इससे बचने के लिए कम–से–कम सरकारी प्रश्रय तो समाप्त हो। जनगणना एवं विभिन्न प्रलेखों तथा सरकारी प्रार्थना–पत्रों से स्वयं धर्म के प्रश्न को हटाकर इसे समाप्त करना होगा। इसके लिए मात्र प्रशासनिक व्यवस्था की आवश्यकता है, संवैधानिक परिवर्तन की किसी भी प्रकार की आवश्यकता नहीं है।

इससे मानवता में हमारा विश्वास दृढ़ होगा। हम एक–दूसरे के सहयोगी होंगे। हम 'धर्म' के न होकर भारत के होंगे । यह बात आसानी से तो नहीं होगी, परन्तु यदि सरकारी प्रश्रय समाप्त हो जायेगा तो शनैः शनैः हम भी एक–दूसरे के होते जायेंगे।

2. जाति के नाम पर 'आरक्षण' – 'आरक्षण' नागरिक असुरक्षा, घृणा, बदले की भावना एवं वैमनस्यता की भावना को बढ़ावा दे रहा है तथा सरकारी अकुशलता एवं अदक्षता को मजबूती प्रदान कर रहा है। मात्र इतना ही नहीं 'जिनको आरक्षण मिल रहा है' (अब 7 अगस्त 1990 की घोषणा के बाद 49.5 प्रतिशत से अधिक) उनकी उन्नति नहीं हो रही है वरन् वह उद्दण्ड, अकुशल अदक्ष, शिक्षा के प्रति उदासीन एवं समाज के प्रति रूग्ण एवं असहिष्णु होते जा रहे है। 'जिनको आरक्षण नहीं मिल रहा है' वह या तो देश देश छोड़कर जा रहे हैं और जो

यहां रह रहे हैं उनके अन्दर ऐसी विकृति भरती जा रही है जो कब विस्फोटक रूप धारण कर ले कुछ कहा नहीं जासकता। मेडीकल, इंजीनियरिंग एवं अन्य प्रवेश परीक्षाओं में 40 प्रतिशत अंक पाने वाली प्रत्याशी, मेडीकल कॉलेज में, मेडीकल शिक्षा पा रहा हैं और 70 प्रतिशत से भी अधिक अंक पाने वाला प्रत्याशी सड़क पर धक्के खा रहा है। क्यों ? क्योंकि पहला आरक्षण नीति को पोषित कर रहा है और दूसर आरक्षण–नीति का परिणाम भुगत रहा है । पहला मेडीकल तथा अनय शिक्षाप्राप्त करके मेडीकल एवं अन्य के धन्धों को दोषपूर्ण बनाने की तैयारी में लगा है तो दूसरा सड़क पर धक्के खाकर भारत एवं समाज को कोस रहा है। यह न्याय है क्या ? कौन–सा न्याय–प्राकृतिक, सामाजि, आर्थिक या धार्मिक? यह भारतीय राजनीतिज्ञों के लिए राजनैतिक न्याय अवश्य हैं, जो भारतीय जनमानस को भारतीय नहीं विशेष–जाति का पोषक बना रहा है। गांधी को गलत क्यों समझा जा रहा है? तुर्रा यह भी हे कि देश के भविष्य के साथ खिलवाड़ करते हुए यह कार्य उत्साह के साथ सम्पन्न हो रहा है।

तब क्यों हो? जिनको (आरक्षण 'जाति' का प्रश्रय पाने वालों को) सरकार सामाजिक दृष्टि से आगे बढाने के लिए कृत संकल्प है उन्हें–

(1) निःशुल्क शिक्षा देकर इनकी योग्यता बढ़ानी चाहिए,

(2) खाने, पहनने, रहने, स्वास्थ्य का पूरा–पूरा ध्यान देने के लिए पूरी–पूरी आर्थिक एवं भौतिक सहायता देनी चाहिए,

(3) उनकी इच्छानुसार व्यवसाय या नौकरी की परीक्षा आदि की तैयारी के लिए पूर्ण–रूपेण सुख–सुविधा प्रदान करनी चाहिए,

(4) सबके बराबर लाने के लिए संसार के सभी शीरिक एवं मानसिक सुख की सामग्री उन्हें उपलब्ध करानी चाहिए।

परन्तु समाज और दे को अकुशलता, अदक्षता, अन्याय एव विघटन से बचाने के लिए तथा कुशलता, दक्षता, न्याय एवं एकता तथा सहयोग एवं सद्भावना को बढ़ावा देने के लिए 'आरक्षण' की नीति को समाप्त कर देना चाहिए । आरक्षण न तो न्यायसंगत और न उचित है। इससे एक ओर बराबर न आने की होड़ लगी है । क्योंकि जब योग्य न होने पर ही सब कुछ प्राप्य है तो याग्य होकर क्या करना है? दूसरी ओर निराशा व्याप्त है 'घोर निराशा' । वहां यह कहना है कि योग्य होकर भी क्या करेंगे ? हमें तो 'अयोग्य' के आगे 'झुकना' ही है। उनके रहते जब हम दौड़ में आगे निकल ही नहीं सकते–आगे निकलेंगे भी तो 'इनाम', 'अयोग्य' या 'कम कुशल' या 'कम दक्ष' या 'कमजोर' को ही मिलना है तो हम क्यों कुशल हों, क्यों योग्यता की शक्ति बटोरें ?

आरक्षण देश की युवा पीढ़ी पर कुप्रभाव डाल रहा है और उनमें निराशा घर करती जा रही है। एक बढ़ नहीं पा रहा है और दूसरा बढ़कर भी पीछे धकेला जा रहा है। देश के हित में यही हे कि आरक्षण समाप्त हो और अधिकतम सुख–सुविधा 'उन्हें' उपलब्ध हो जिससे वह बराबर होकर कन्धा–से–कन्धा मिलाकर सगर्व कह सके 'हम सब एक हैं और एक ही रहेंगे।' स्वार्थलिप्तता से हटकर परलित्तता की समाज और देश को महान बनाती है तथा मानव एवं मानवता की रक्षा करती है। गांधी का यही लक्ष्य है, यही चिन्तन है और यही उनके सपनों का भारत है, जिसमें अन्याय के विरूद्ध सब लड़ेंगे और सत्य व अहिंसा के रास्ते पर चलकर देश को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय दिलाएंगे, तथा मानव, मानवता एवं मानव–मूल्यों की दृष्टि से उस दिशा की ओर ले जाएंगे जहां सकबा कल्याण हो और सबकी उन्नति हो अर्थात् 'सर्वोदय' हो।

यदि हमें निजात है तो अपने जीवन से आधुनिकीकरण के जहर को उतारना होगा, अन्यथा संयुक्त राष्ट्र राष्ट्रीय एकेडमी, बिली ब्राड्त कमीशन, विश्व बैंक के अनुसार–

(प) हमारे खनिज पदार्थों में लोहा और टंगस्टन सन् 2200 तक, कोयला सन् 2100 तक और खनिज–तेल सन् 2050 तक ही हमारा साथ दे पायेंगे।

(पप) आज तीसरे संसार की आबादी पूरे संसार की आबादी के 70 प्रतिशत के बराबर है, जो निक्अ भविष्य में 90 प्रतिशत तक पहुंच जायेगी।

(पपप) संसार की लगभग 60 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी एवं दरिद्रता में दिन गुजारने के लिए बाध्य है, और कल भी रहेगी।

(पअ) अणु शक्तियों के उदय, प्रसार एवं वृद्धि के कारण समस्त सृष्टि ही खतरे में पड़ गई है, और सम्पूर्ण जन–समुदाय के नष्ट होने की घड़ी कभी भी, किसी भी वक्त आ सकती है।

यदि हमें अपने प्राकृतिक संगठनों की रक्षा करनी है, जनसंख्या विस्फोट कम करना है, दरिद्रता को दूर करना है तो हमें अणु शक्ति के प्रयोग की आवश्यकता नहीं हैं । इन्हें तो समाप्त करने का बीड़ा उठाना ही है और गांधी जी के ही शब्दों में –

(प) चूहे–बिल्ली की भांति अपनी काम–शक्ति का इस्तेमाल न करके अपनी इन्द्रियों पर काबू करके जनन–प्रक्रिया पर प्रतिबन्ध लगाना होगा तथा मनुस्मृति के 'एक जोड़ा एक बच्चा' के सिद्धान्त पर अमल करना होगा। इसके आत्म–संयम और शिक्षा के माध्यम से ही प्राप्त करना होगा। अन्य पद्धतियां नैतिक पतन, सामाजिक बुराई और समाज की टूटन को बढ़ावा देंगी तथा हमारी सभ्यता ही दांव पर लग जायेगी।

अतः आत्मसंयम एवं शिक्षा के बल पर जनन–प्रक्रिया के रोक के लिए अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प सम्पूर्ण मानव जाति के पास नहीं है। अन्य सभी विकल्प मानव मूल्यों की समाप्ति के हैं। गांधी यह कभी नहीं चाहते और न करने की सलाह देते ।

(पप) आधुनिक सभ्यता हमारे संसाधनों को निचोड़ रही है, आवश्यकताओं को बढ़ा रही है, बाजार के लिए उत्पादन को प्रोत्साहन कर रही है और उपभोगवाद को प्रतिष्ठित कर रही है।

इसका परिणाम, नोबल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री जान टिनबरजन (श्रंद ज्पद ठमतहमद) के शब्दों में, ''मानव सभ्यता का दो तिहाई भाग 30 सेण्ट प्रतिदिन (अर्थात् लगभग 5. 25 रूपये) पर जीवन निर्वाह कर रहा है.....लगभग एक अरब लोग अशिक्षित हैं.....और पूरे संसार के सम्पूर्ण संसाधनों के 20 प्रतिशत (प्रति व्यक्ति) के बराबर का भाग तो केवल औद्योगिक देश ही प्रयोग में ला रहे हैं। हम आज उस स्थिति में जी रहे हैं

www.ignited.in

जिसमें करोडों लोग सूर्योदय से सूर्यास्त तक दरिद्रता एवं असामयिक मृत्यु की प्राप्ति के लिए कार्यरत हैं... साथ ही विकासशील देशों में मुट्ठी भर लोग बाहुल्य में जी रहे हैं, और यदि तार्किक बुद्धि एवं मनुष्य से लगाव की दृष्टि से यह देश सोचें तो भूख और अभाव दूर किये जा सकते हैं।

इन सारी स्थितियों से बचने का उपाय हमारे उस मसीहा ने बताया था–

(प) मानवतावादी सोच,

(पप) अपरिग्रह,

(पपप) ट्रस्टीशिप,

(पअ) सत्य, अहिंसा एवं सत्याग्रह का मार्ग,

(अ) घरेलू, कुटीर, ग्रामीण, उद्योग–धन्धे, मौद्रिक–पूंजी एवं श्रम पूंजी में संतुलन और मेल, विनियम व्यापार, आत्मनिर्भर समाज, और

(अप) मानव एवं मानव मूल्यों की रक्षा।

इन सबसे हम अपने पर काबू पा सकेंगे । जब हम स्वयं को नियंत्रित कर लेंगे तो इन्द्रियों पर नियंत्रण बहुत ही सरल हो जायेगा। तब शायद हम मनुस्मृति के 'एक जोड़ा एक बच्चा' की युक्ति को पहचान लें और उस पर अमल भी कर लें । यही हमारी आधुनिक उन्नति की पराकाष्ठा होगी और आधुनिकता की परीक्षा भी क्या हक ऐसा कर सकेंगे?

'अर्थ' प्रेरित शिक्षा व्यवस्था – 'अर्थ' प्रेरित शिक्षा व्यवस्था से तात्पर्य उस शिक्षा व्यवस्था से है जो अर्थ–अर्जन, अर्थ–सृजन, अर्थ–उपयोग एवं अर्थ–वितरण के विभिन्न स्तर की आवश्यकता एवं अनिवार्यता को गौण रखते हुए सौ 'मनुश्य के निर्माण' को प्रमुखता दे जिससे (प) मनुष्य प्राकृतिक, (पप) सामाजिक, और (पपप) राष्ट्रीय बनने के पश्चात् ही आर्थिक या अर्थ–मनुष्य बनने की चेष्टा करे । अर्थ–अर्जन, अर्थ–सृजन, अर्थ–उपयोग एवं अर्थ–वितरण की आवश्यकता या अनिवार्यता अथवा दोनों स्थितियों को आज के युग में कोई झुठला नहीं सकता। गांधी ने भी कभी इसे झुठलाया नहीं। परन्तु वह इतना अवश्य कहते थे कि 'अर्थ' मानव–जीवन में प्रमुख नहीं है। प्रमुख तो है उसका स्वयं का अस्तित्व । मनुष्य स्वयं को नहीं खोना चाहता। उसे स्वयं को खोना भी नहीं चाहिए। स्वयं को खोकर भौतिक बाहुल्य से उसे भौतिक सुख भले ही मिल जाय आत्मिक सुख नहीं मिल सकता और आत्मिक सुख के बिना मनुष्य अधूरा है। उसका संसार में आने का ध्येय ही समाप्त हो जायेगा यदि वह आत्मिक सुख से वंचित रह जायेगा। गांधी का 'मनुष्य' **मनु** के 'पवित्र मनुष्य की दुर्लभता' की स्थिति को दूर करके ऐसे मनुष्य को जन्म देगा जिससे वह चरमोत्कर्ष तक पहुंच जाय। इस चरमोत्कर्ष के लिए उसे ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिससे मनुष्य इस संसार में रहकर भी सुखी, निर्लिप्त और आध्यात्मिक बना रहे। गांधी के अनुसार इसी में मानव–कल्याण है और परिणामतः विश्व–कल्याण भी इसी में निहित है।

'शिक्षा का विभाजन – शिक्षा को 'आवश्यकता एवं अनिवार्यता' की दृष्टि से मुख्यतः चार भागों में विभक्त कर सकते हैं –

1. प्राथमिक (प्राइमरी) शिक्षा,
2. प्राथमिक (सिकेण्डरी) शिक्षा,
3. प्राथमिक (टेक्नीकल) शिक्षा,
4. प्राथमिक (हायर) शिक्षा,

प्राथमिक शिक्षा – आज के श्रेणीबद्ध मापदण्ड के अनुसार प्राथमिक शिक्षा आठवीं कक्षा तक होनी चाहिए जो आठ वर्षों में समाप्त हो जानी चाहिए तथा जिसे समाप्त होने में बच्चे की आयु न्यूनतम 12 एवं अधिकतम 13 वर्ष होने का अनिवार्य प्रावधान होना चाहिए।

समय, समाज एवं राष्ट्र तथा सर्वोपरि मनुष्य की आवश्यकता को ध्यान में रखकर प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध इस प्रकार होना चाहिए जिससे–

(प) **यह शिक्षा अनिवार्य हो –** ऐसा प्रबन्ध करना होगा जिससे 2000 तक इस देश का कोई भी व्यक्ति चाहे वह बच्चा हो या बूढा, पुरूष हो या स्त्री, सभी को एक समान, एक ही स्तर पर तथा एक ही योग्यता का नागरिक बनने के लिए प्राथमिक रूप से शिक्षित होना अनिवार्य कर दिया जाए।

(पप) **यह शिक्षा निःशुल्क हो –** बिना धर्म, जाति, लिंग एवं ग्रामीण–शहरी का भेद उत्पन्न किये हुए 6 व्यक्तियों के औसत के अनुसार पारिवारिक आय 3,000 (1990–91 मूल्य स्तर) मासिक के आधार पर, सबके लिए, यह शिक्षा, सब प्रकार (एक समय का खाना, पुस्तक एवं अन्य लेखन सामग्री सहित) से, निःशुल्क हो। परन्तु जिनकी पारिवारिक आय 3,000 रूपये मासिक से अधिक हो और जिनके परिवार में 6 व्यक्तियों से अधिक (माता–पिता, दो बच्चे तथा उनके माता–पिता अथवा भाई, बहिन–सहोदर) उने नाम–मात्र का (पांच से बीस रूपये तक) शुल्क लिया जाय उन्हें पुस्तक, अन्य लेखन सामग्री आदि निःशुल्क न दिया जाय । परन्तु एक समय के खाने की व्यवस्था उनके लिए भी होनी चाहिए।

(पपप) **इस शिक्षा का स्तर देश–भर में समान हो –** पूरे देश में इस शिक्षा का स्तर समान हो। धर्म, जाति, लिंग, ग्रामीण–शहरी, अमीर–गरीब, का भेद उत्पन्न किये बिना, सभी को समान स्तर की शिक्षा देने का प्रबन्ध करना चाहिए। न तो स्तर में किसी प्रकार का अन्तर हो और न ही शिक्षा–प्रणाली, पाठ्यक्रम, परीक्षा–पद्धति, अन्य शिक्षा सुख–साधना आदि में किसी प्रकार का भेद हो।

(पअ) **इस शिक्षा का प्रबन्ध संवैधानिक रूप से केन्द्रीय सरकार के हाथ में हो और स्थानीय एवं क्षेत्रीय प्रशासन का इनमें किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न हो –** हर स्तर पर–पाठ्यक्रम, प्रबन्ध, वित्त, शिक्षक, परीक्षा, तथा अन्य तत्सम्बन्धी बातों में केवल केन्द्रीय सरकार का ही पूरे देश में वर्चस्व हो। संवैधानिक अथवा कानूनी या सामाजिक किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप स्थानीय या क्षेत्रीय स्तर पर नहीं होना चाहिए। स्थानीय एवं क्षेत्रीय प्रशसन को केवल शासकीय अधिकार हो जिससे वह देख सके कि इस शिक्षा का उद्देश्य पूरा हो रहा है अथवा नहीं। व्यवधान की स्थिति दूर करने का पूरा कर्त्तव्य इनका होना चाहिए।

(अ) **इस शिक्षा के शिक्षक योग्य वं आध्यात्मिक ज्ञान से ओत–प्रोत 'चाणक्य' की श्रेणी के हों, जिससे 'केवल'** सर्वोत्तम नागरिका का निर्माण हो सके और देश और समाज के इन

सेवकों की ऐसी नींव मजबूत हो जाए जिन पर पूरा समाज और हमारा यह भारत गर्व कर सके।

(अप) **इस शिक्षा का पाठ्यक्रम एक समान एवं श्रेष्ठ नागरिक बनाने के उद्देश्य से निर्धारित हो, इस शिक्षा के पाठ्यक्रम में –**

(क) **भाषा ज्ञान** : हिन्दी एवं अंग्रेजी दोनों का समान रूप से इस स्तर का ज्ञान जिससे नागरिक अपना एवं अपने समाज तथा राष्ट्रीय का ज्ञानार्जन करके अपनी भूमिका निभा सके।

(ख) **गणित–ज्ञान** : इस स्तर का ज्ञान जिसके उसकी बुद्धि विकास एवं साधारण तकनीकी ज्ञान में कहीं पर रूकावट न पैदा हो।

(ग) **सामाजिक ज्ञान** : इस स्तर का ज्ञान जिससे साधारण नागरिक को साधारण ज्ञान की उपलिब्ध हो, ओर वह समझ सके कि समाज, राष्ट्र और वह स्वयं क्या था, क्या है और उससे समाज और राष्ट्र को क्या अपेक्षाएं हैं।

(घ) **रूचि–वृद्धि–ज्ञान** : वातावरण, परिस्थिति, समाज, काल, देश के अनुसार बच्चे में जो रूचि दिखाई पड़े या जिसमें वह दक्षता प्राप्त करने की रूचि दिखाये अथवा जिस 'दक्षता' को वह अपने जीवन–यापन का साधन बनाने की इच्छा रखता हो, उसे पूर्णतः उभारने की इस ढंग से कोशिश करना कि यदि वह आठवीं के बाद आगे न गढ़ सके तो वह रोजी–रोटी के श्रम को आसानी से करके जीवन–यापन पर्याप्तता के साथ कर सके। उसे ''आगे के जीवन में न्यूनता एवं निर्भरता का मुंह न देखना पड़े।'' इस उद्देश्य की पूर्ति का प्रयत्न करना ही उस ज्ञान का ध्येय हो।

(ड़) **शारीरिक ज्ञान** : शरीर–रचना से लेकर शरीर की सुरक्षा एवं इसका महत्व तर्क–वितर्क, ज्ञान–प्रतियोगिता, व्यायाम, योगासन, खेलकूद, आचार–व्यवहार आदि के माध्यम से शारीरिक ज्ञान देना, बच्चे को स्वयं एवं अपने तथा अन्य के शरीर से संबंधित जानकारी देना, और उसके शरीर को भावी जीवन के लिए तैयार करने की ओर उन्मुख शिक्षा देना ही इस ज्ञान का उद्देश्य हो।

(अपप) **इस शिक्षा की परीक्षा–प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जिसमें परीक्षा उत्तीर्ण करने पर कम जोर हो ओर ज्ञानार्जन पर अधिक जोर हो –** सच तो यह है परीक्षा स्वयं में ज्ञानार्जन में बाधक है। परीक्षा इस ढंग से नियोजित होनी चाहिए जिससे अर्जित ज्ञान का पूर्ण मूल्यांकन हो सके। इस मूल्यांकन के लिए परीक्षा उत्तीर्ण करना आवश्यक नहीं। समय–समय पर शिक्षक द्वारा पक्षपात–रहित विवेकपूर्ण ढंग से, जो कुद भी ज्ञान बच्चे को दिया गया है–''उसको उसने आत्मसात् (कण्ठस्थ नहीं) कर लिया है अथवा नहीं और उसका वह जीवन में क्रियान्वयन कर सकता है या नहीं'', परीक्षा लेना जिससे वह शिक्षार्थी के लिए भारस्वरूप न हो और जिससे वह कतराये नहीं । शिक्षक एवं शिक्षार्थी दोनों का यहां परिश्रम करना पड़ेगा, और दोनों को स्वयं ही अपने आपको आंकना पड़ेगा, तत्पश्चात् ही शिक्षार्थी परीक्षा दे सकेगा और शिक्षक परीक्षा ले सकेगा।

उदाहरण स्वरूप यदि भाषा–ज्ञान की परीक्षा लेनी है तो प्रतिदिन की बातचीत, लेख, लिखावट, तर्क–वितर्क, अपने ही सहपाठियों को समझाना, पुस्तक–पाठ, पुस्तक या पाठ मीमांसा, समालोचना आदि कुछ ऐसी पद्धतियां है जिससे शिक्षार्थी की परीक्षा समय–समय पर हो सकती है। अनुत्तीर्ण के स्थान पर आठवीं तक पहुंचना अथवा पहुंचना और आठवीं में अर्जित ज्ञान की पूरी सोद्देश्य परीक्षा लेना शिक्षार्थी को उत्साहित करेगा और वह आठ वर्षों में कुछ प्राप्त भी कर सकेगा।

(अपपप) **इस शिक्षा का गठन अथवा व्यवस्था यह शिक्षा :**

(क) अनिवार्यतः केन्द्रीय सरकार द्वारा सार्वजनिक रूप से प्रेरित, संयोजित वित्तीय–पोषित, शासित एवं पर्यवेक्षित हो।

(ख) केन्द्र सरकार के अतिरिक्त किसी व्यक्ति, समुदाय, स्थानीय शासन अथवा क्षेत्रीय शासन का (केन्द्रीय सरकार के सौंपे जाने पर 'प्रशासन' के अतिरिक्त) हस्तक्षेप न हो।

(ग) प्रत्येक 'गांव समुदाय' में एक प्राथमिक स्कूल अवश्य हो। कस्बों एवं शहरों में भी प्रति 10,000 (ऋ –10:) की जनसंख्या पर एक प्राथमिक स्कूल अवश्य होना चाहिए।

(घ) ''शिक्षा विनियोग है और प्राथमिक शिक्षा भविष्य की आधर शिला'' सिद्धान्त ही आधार हो।

(ड़) 'प्राथमिक शिक्षा नीति' स्थायी हो और उसमें किसी भी प्रकार का प्रयोग या परिवर्तन 'ठोस आधार' पर भी 'न' के बराबर होना चाहिए। प्राथमिक शिक्षा का प्रभाव पूरे 'वश', 'कल' के समाज और 'भावी राष्ट्र निर्माण' पर पड़ता है।

प्राथमिक शिक्षा पर ही जीवन का सार, समाज का यथार्थ एवं राष्ट्र की संभावनाएं निर्भर करती है। यह वह थाती है जो विरासत के रूप में एक वंश दूसरे वंश को देना है इस विश्वास और आश्वासन के साथ कि अगला वंश हमसे आगे होगा सुख–समृद्धि में मानवता एवं मानव–मूल्यों में, और आत्मिक तथा आध्यात्मिक विकास में भी ।

माध्यमिक शिक्षा – प्राथमिक शिक्षा जहां आत्मज्ञान, आत्मोन्नति एवं आत्मोत्कर्ष की नींव रखती है, वहां माध्यमिक शिक्षा (9वीं श्रेणी से 12वीं श्रेणी तक–चार वर्ष– 12–13 से 16–17 वर्ष की आयु तक) जीवन–दर्शन की वह नींच रखती है जहां से मनुष्य अपने समाज और राष्ट्र की अर्थ–अर्जन, सृजन, उपयोग एवं वितरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभते हुए 'रीढ़ की हड्डी' की तरह काम करता है। मनुष्य चल तो चुका है, पर उसे दौड़ना है समाज के साथ राष्ट्र के साथ। ''इस दौड़ में वह पूर्ण भागीदार हो'' के उद्देश्य की पूर्ति के लिए माध्यमिक शिक्षा प्रेरित, संयोजित, पोषित, शासित एवं पर्यवेक्षित की जाती है।

माध्यमिक शिक्षा का भार पूर्णतः क्षेत्रीय प्रशासन के अधीन होना चाहिए। कारण स्पष्टतः यह है कि क्षेत्र विशेष अपनी आवश्यकतानुसार आठवीं पास बच्चे को वह मोड़ दे सकते हैं जिसकी उन्हें आवश्यकता है। परन्तु यहां भी केन्द्र का खुला अधिकार निम्नलिखित तीन बातों में अवश्य होना चाहिए–

1. देश की राष्ट्रीय शिक्षा नीति जिस पर कोई समझौता नहीं होना चाहिए। इसी नीति के अन्तर्गत रहकर क्षेत्रीय प्रशासन माध्यमिक शिक्षा का संयोजन, पोषण एवं पर्यवेक्षण करेंगे।

2. हिन्दी एवं अंग्रेजी का भाषा ज्ञान आगे बढ़ाते हुए एक अन्य भारतीय भाषा का ज्ञान कराना माध्यमिक स्तर पर अनिवार्य हो।

3. सामाजिक ज्ञान (जिसमें इतिहास भी सम्मिलित है) की पुस्तकें केन्द्रीय संस्था द्वारा अनुमोदित होनी चाहिए और इसकी शिक्षा चारों माध्यमिक कक्षाओं के लिए अनिवार्य होनी चाहिए।

क्षेत्रीय प्रशासन की आवश्कता के अनुरूप ही इस शिक्षा को संगठित करना आवश्यक है। परन्तु यहां इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि बच्चे की 'रूचि एवं रूझान' को आधार मानकर दसवीं कक्षा के पश्चात् आगे की शिक्षा तीन भागों में विभाजित करनी चाहिए:–

1. **मध्य–स्तरीय तकनीकी शिक्षा हेतु :** इसे निम्न तथा मध्य स्तर की तकनीकी शिक्षा के रूप में गठित एवं विकसित करने पर बल देना चाहिए जिससे बारहवीं कक्षा उत्तीर्ण होते ही हमारा नागरिक अपने जीवन–यापन योग्य रोजी–रोटी के श्रम के लिए पूर्णरूपेण कुशल–श्रम होकर निकले और उसे 'काम' के लिए सरकार या सरकारी एजेंसियों पर न निर्भर रहना पड़े वरन् उसे, सरकारी तथा अर्द्धसरकारी और स्वयं अपने परिवार एवं समाज की सहायता से, स्व–पोषी काम मिल जाय। 'बिना दूसरों की नौकरी किये आत्मनिर्भरता' इस स्तर की तकनीकी शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए।

2. **उच्च–स्तरीय तकनीकी शिक्षा हेतु :** स्वास्थ्य, विज्ञान तथा यांत्रिक एवं अन्य इसी प्रकार के उच्च तकनीकी ज्ञानार्जन के उद्देश्य से इसका आयोजन करना चाहिए जिससे बच्चा आगे निकलकर डॉक्टर, इंजीनियर, विज्ञान, वाणिज्य आदि की शिक्षा प्राप्त करके देश एवं समाज निर्माण में योगदान कर सके। इस दिशा में केवल उन बच्चों को मोड़ना चाहिए जिन्हें आगे शिक्षा ग्रहण करनी है तथा जिनकी रूचि और रूझान इस ओर है।

3. **उच्च शिक्षा हेतु :** जिन बच्चों की रूचि और रूझान प्रशासनिक, प्रबन्धन, कानून, शिक्षण आदि की ओर है उनको इस दिशा की ओर मोडकर इस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए जिससे यह बच्चे आगे चलकर प्रशासक, प्रबन्धक, वकील, शिक्षक आदि बन सके।

4. **शोध शिक्षा हेतु :** माध्यमिक शिक्षा का यह मोड़ देश की भावी आवश्यकता का आंकलन करके निर्धारित करना चाहिए जिससे इन बच्चों के ज्ञान एवं बुद्धि का उपयोग एवं काल के लिए किया जा सके।

इस प्रकार हम अपने नवयुवकों को उनकी रूचि–रूझान के अनुसार जीवन–यापन या रोजी–रोटी के श्रम के लिए तैयार करेंगे, साथ–ही–साथ बुद्धिजीवी श्रम के लिए भी तैयार करेंगे जिससे हमारा उन्नति करेगा, राष्ट्र विकसित हेागा ओर शिक्षा सफल होगी।

उच्च अर्थात् विश्वविद्यालयी शिक्षा – माध्यमिक शिक्षा के चार भागों में से पहला भाग तो बारहवीं के बाद जीवन–यापन में लग जायेगा। इस प्रकार इसके लिए आगे शिक्षा के संयोजन की आवश्यकता नहीं होगी । हमारे अधिकतर माध्यमिक शिक्षित नवयुवक जिनकी संख्या समाज एवं राष्ट्र की आवश्यकता के अनुसार पहले से ही निर्धारित करनी चाहिए (जो 60 से 75 प्रतिशत के मध्य कुछ भी हो सकती है), कार्यरत हो जायेंगे, शेष 25 से 40 प्रतिशत माध्यमिक शिक्षित नवयुवकों को तीन भागों में विभक्त किया जाना चाहिए–

1. उच्च स्तरीय तकनीकी शिक्षा,

2. उच्च शिक्षा, तथा

3. शोध शिक्षा।

इन तीनों श्रेणियों में पहली दो–उच्च स्तरीय तकनीकी शिक्षा एवं उच्च शिक्षा–हेतु प्रेरणा, संयोजकत्व, वित्तीय पोषण, शासन एवं पर्यवेक्षण केन्द्रीय सरकार के कठोर नियमों एवं उपनियमों के अधीन स्वयं केन्द्रीय सरकार, क्षेत्रीय प्रशासन एवं निजी संस्थानों के हाथों में सम्मिलित रूप से होना चाहिए । पाठ्यक्रम सबके समान हों। परीक्षा प्रणाली सबकी समान हो। शेष बातें इन स्वायत संस्थाओं के निर्णय पर छोड़ देनी चाहिए । इसमें जितना कम–से–कम सरकारी हस्तक्षेप होगा उतनी ही सुदृढ़ एवं योग्य समाज की स्थापना हो सकेगी।

इस संबंध में निम्न बातें विचारणीय हैं –

(प) उच्च शिक्षा केन्द्रीय सरकार के पाठ्यक्रमानुसार तथा उन्हीं की परीक्षा–प्रणाली के आधार पर पूरे देश में समान अवसर, पाठ्यक्रम एवं परीक्षा के आधार पर आवश्यकतानुरूप होनी चाहिए। जिनके लिए न्यूनतम बीस वर्षीय एवं अधिकतम पच्चीस वर्षीय योजना के अनुरूप व्यवस्था एवं संयोजन होना चाहिए।

(पप) स्वायत्त संस्थाएं, क्षेत्रीय प्रशासन, केन्द्र सरकार तथा निजी क्षेत्र को सभी उच्च शिक्षा संगठित, नियोजित एवं संयोजित तथा पोषित करने का अधिकार होना चाहिए। सबके अलग–अलग कार्य–क्षेत्र निश्चित होने चाहिए –जैसे (प) मेडकील कौंसिल ऑफ इण्डिया मेडीकल शिक्षा के लिए क्षेत्रीय प्रशासन एवं केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत, (पप) इंजीनियरिंग शिक्षा भारतीय इंजीनियरिंग शिक्षा परिषद् के नियमों, उपनियमों के अनुसार क्षेत्रीय प्रशासन के अन्तर्गत, (पपप) प्रशासनिक एवं प्रबन्धकीय शिक्षा भारतीय प्रशासनिक एवं प्रबन्धकीय बोर्ड के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार , क्षेत्रीय प्रशासक एवं स्वायत्त संस्थाओं के अन्तर्गत, (पअ) विधि, वकील आदि की शिक्षा भारतीय विधि संस्थान के अन्तर्गत स्वायत संस्थाओं के अन्तर्गत (अ) अन्य बुद्धिजीवी श्रम की शिक्षा विश्वविद्यालयों के अन्तर्गत विभिन्न विद्यालयों द्वारा निजी क्षेत्र आदि में संगठित करनी चाहिए।

यहां यह बात अवश्य सुझायी जा सकती है कि यह सभी बारहवीं कक्षा के पश्चात् पांच वर्षों की अवधि की होनी चाहिए जिससे विद्यार्थी को अपने–अपने क्षेत्र में पूर्ण कुशलता प्राप्त हो जाय। इन पांच वर्षों में अन्तिम वर्ष वास्तविक कार्य–क्षेत्र में प्रशिक्षण हेतु सुरक्षित किये जाने चाहिए जिसे जब विद्यार्थी विद्यालय से बाहर आये तो कुशल, दक्ष एवं आत्मनिर्भर हो। प्रशिक्षण एवं शिक्षा के पहले पांच वर्षीय आवश्यकताओं का आंकलन करके ही प्रवेश नीति बनानी चाहिए तथा सभी शिक्षित एवं प्रशिक्षित व्यक्तियों को रोजगार की उपलब्धि कराना अनिवार्य बनाना चाहिए। लोक सेवा आयोगों की भांति इनकी परीक्षाएं आदि नियोजित करनी चाहिए और पांच वर्षों के पश्चात् इन्हें भटकने के लिए छोड़ देने के स्थान पर कार्यरत करना चाहिए।

यहां प्रथम तथा बुद्धिजीवी श्रम हेतु अन्तिम उपाधि अर्थात् डिग्री देनी चाहिए। उसके बाद अपने कार्य में कुशलता एवं दक्षता के लिए थोड़ी–थोड़ी अवधि के पश्चात् शिक्षण एवं

www.ignited.in

प्रशिक्षण की व्यवस्था भले ही हो। आगे की शोध डिग्री आदि के लिए इनके प्रवेश पर लगभग प्रतिबन्ध ही लगा देना चाहिए।

शोध–शिक्षा – पांच वर्षीय उपाधीय (डिग्री) शिक्षा के पश्चात् लगभग सभी कार्यरत हो जायेंगे । यह भी हो सकता है कि उच्च एवं तकनीकी शिक्षा के बाद अपने–अपने कार्यक्षेत्र में कार्यरत करने वाली संस्थाएं उन्हें शोध–कार्य आदि में लगाये। ऐसी अवस्था में वे उनके कर्मचारी होंगे ओर उनके अनुसार कार्यरत होंगे । शोध भी कार्य में ही सम्मिलित हो जायेगा और अलग से विश्वविद्यालय आदि की आवश्यकता नहीं होगी।

परन्तु जो वैज्ञानिक बनने की रूचि रखते हैं अथवा जो तकनीकी शिक्षा में सर्वोत्तम प्राप्त करने के लिए संलग्न होना चाहते हैं या जो शिक्षक बनना चाहते हैं, चाहे प्राइमरी स्तर के अथवा उसके आगे के स्तरों, के लिए अथवा जो शोध को ही अपना जीवन समर्पित करना चाहते हों, इन सबके लिए विश्वविद्यालय आवश्यकतानुसार व्यवस्था करेंगे तथा इन्हें पूर्णतः केन्द्रीय सरकार द्वारा स्वयत्तता के आधार पर संचालित किया जाय। वित्त एवं नियमों तथा उपनियमों के लिए विश्वविद्यालय केन्द्रीय सरकार पर निर्भर होंगे और अन्य सभी क्रिया–कलापों के लिए स्वायत्त। 'सर्वोत्तम' इनका उद्देश्य होगा। प्रवेश सीमित एवं आवश्यकतानुरूप होगा तथा उपाधि (डिग्री) केवल शोध किये कार्यों के लिए देने के की व्यवस्था होगी । इस प्रकार–

(प) उच्च स्तरीय तकनीकी शिक्षा राष्ट्र एवं समाज की न्यूनता को पर्याप्तता में बदलने तथा स्वास्थ्य एवं शिक्षा की व्यवस्था के लिए दी जायेगी । जहां पांच वर्षों के शिक्षण–प्रशिक्षण के पश्चात् उपाधि एवं रोजगार दोनों मिलेगा।

(पप) उच्च शिक्षा में राष्ट्र एवं समाज के प्रशासन, प्रबन्ध तथा बुद्धिजीवी श्रम के लिए मानव–संसाधन का निर्माण एवं विकास किया जायेगा। पांच वर्षों पश्चात् इन्हें उपाधि दी जाएगी तथा (जो शोध–कार्यों में आगे जाने के उद्देश्य के लिए अध्ययनरत थे, उसके अतिरिक्त) रोजगार भी उपलब्ध कराया जायेगा।

(पपप) शोध शिक्षा सीमित मात्रा में उन्हें उपलब्ध कराई जायेगी जो शोध को ही समर्पित होना चाहते हैं। इसमें समय की सीमा नहीं होगी। परन्तु इन्हें एक निश्चित अवधि तक शोध–छात्रवृति (तीन या चार या पांच वर्षों के लिए–शोध की प्रकृति के अनुसार) दी जायेगी और सफलतापूर्वक शोध पूरा करने पर शोध उपाधि तथा उनके शोध के उपयोगार्थ इनको सफल शोध शिक्षा प्रत्येक–स्तर के शिक्षकों के लिए अनिवार्य होगी। यह कोई आवश्यक नहीं कि शोध केवल 'शोध उपाधि' के लिए ही किया जाय। परन्तु 'शोध उपाधि' के लिए शोध में संलग्न नहीं होना चाहते उन्हें भी निश्चित अवधि के लिए शोध की सभी सुविधाओं को उपब्ध कराने का कर्त्तव्य विश्वविद्यालयों का होगा। हां, प्रवेश–नीति दोनों के लिए एक समान होनी चाहिए।

जीवन–यापन (रोजी–रोटी) श्रम, बुद्धिजीवी श्रम एवं शोध की दृष्टि में रखकर शिक्ष्ज्ञा को इस प्रकार संगठित करने की व्यवस्था करनी होगी जिससे हर क्षेत्र में भारतीय संस्कृति, भारतीय परम्पराओं एवं भारतीय भाषाओं को प्राथमिकता क्या, प्रमुखता देने पर जोर दिया गया हो । यदि ऐसा हक कर पाये तो हम केवल सर्वोत्तम 'अर्थ' (धन–अर्जन एवं उद्देश्य) प्रेरित शिक्षा व्यवस्था का निरूपण एवं क्रियान्वयन ही नहीं करेगे वरन् राष्ट्र, समाज और व्यक्ति को इस बात का आश्वासन भी देने में असमर्थ हो पायेंगे कि देश अपने नियोजित मार्ग पर, भारतीयों को पूर्ण भारतीय बनाते हुए, विश्व–सजगता एवं उत्थान के लिए कार्यरत रहेगा तथा संसार में अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान बना लेगा। यह, व्यक्ति को मानव–धर्म में पारंगत करने, समाज को पर्याप्तता प्रदान करने, राष्ट्र को सम्पन्न बनाने एवं विश्व को विश्वबन्धुत्व की ओर ले जाने के लिए, देश की आवश्यकता और समय की पुकार है।